



## भारतीय संस्कृति और राष्ट्र की अवधारणा: दीनदयाल उपाध्याय के संदर्भ में एक तुलनात्मक अध्ययन

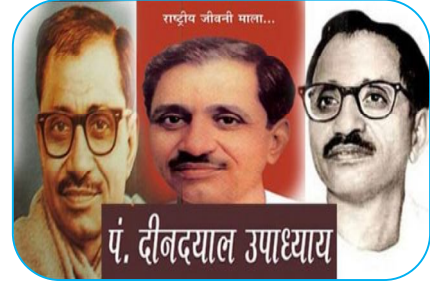
अनुपम कुमार राय<sup>1</sup>, प्रो.(डॉ.) अनिल कुमार राय<sup>2</sup>

<sup>1</sup>शोधार्थी, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा(महाराष्ट्र).

<sup>2</sup>प्रोफेसर, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा(महाराष्ट्र).

### सारांश

आज राष्ट्र को भिन्न-भिन्न लोगों द्वारा भिन्न-भिन्न मत से परिभाषित किया जाता है। जो उचित व अनुचित दोनों प्रकार से परिभाषित करते हैं। हमें राष्ट्र को परिभाषित करने के लिए एक ऐसे दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो भारतीय संस्कृति को समाहित कर राष्ट्र की भारतीय अवधारणा प्रस्तुत की जाए। इस लेख में राष्ट्र को परिभाषित करने वाले अनेक विद्वानों का अध्ययन कर राष्ट्र को भारतीय संस्कृति के माध्यम से परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। इस निबंध में पं. दीनदयाल उपाध्याय के संस्कृति राष्ट्र की अवधारणा मध्य में रखकर यूरोपीय व भारतीय विद्वानों के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया गया है, ताकि राष्ट्र की एक शुद्ध भारतीय अवधारणा प्रस्तुत की जाए। राष्ट्र क्या है? राज्य क्या है? राष्ट्र-राज्य में क्या संबंध है? राष्ट्र की आत्मा क्या होती है? राष्ट्र में धर्म का क्या महत्व है? आदि कई गंभीर प्रश्नों पर भिन्न-भिन्न विचारकों का अध्ययन किया गया है। इस आलेख में तुलनात्मक अध्ययन पर विशेष जोड़ दिया गया है।



**Key Note:** राष्ट्र, संस्कृति, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, चिंतित.

आज विश्व के राजनीतिक मानचित्र को देखें तो पाएंगे कि भूमि का हर एक भाग राष्ट्र व राष्ट्रवाद के सिद्धांत के अनुसार विभाजित है। प्रत्येक भू-भाग के राष्ट्र का स्वरूप भिन्न व प्रत्येक राष्ट्र का संदर्भ अलग-अलग होता है। अगर देखें तो इसी संदर्भ से हर चिंतक और सिद्धांतकार अलग-अलग रूप से प्रभावित होकर अपने मत रखता है। राष्ट्र की अवधारणा के वाद-विवाद में कई चिंतकों या चिंतकों के समूह द्वारा राष्ट्र की अवधारणा को एकरूपता के रूप में परिभाषित करने की कोशिश की जाती रही है परंतु कई चिंतक व चिंतकों के समूह उस एकरूपता को न मानते हुए अपने अलग-अलग विचार रखते हैं। इसी कारण आज तक राष्ट्र की अवधारणा का स्वरूप अनसुलझा जैसा प्रतीत होता है, जिसका आगे विस्तार स्वरूप विवेचना करेंगे, साथ ही यह भी देखेंगे कि कई विद्वानों का मानना है कि राष्ट्र व राष्ट्रवाद 200 साल से ज्यादा पुराना नहीं है परंतु फिर प्रश्न यह उठता है कि अगर राष्ट्र और राष्ट्रवाद 200 साल से ज्यादा पुराना नहीं है तो इतने कम समय में ही राष्ट्र व राष्ट्रवाद इतना मजबूत और सार्वभौमिक अवधारणा कैसे बन गया? क्या भारत का राष्ट्र व राष्ट्रवाद 200 वर्षों का ही है? या कई सदियों पहले ही इसका निर्माण हो चुका था? जैसे कि यहाँ के अनेक ग्रंथों व कई विचारकों द्वारा राष्ट्र के विकास से जुड़ी घटनाओं का वर्णन किया है। क्या पूर्वी और पश्चिमी राष्ट्र व राष्ट्रवाद के बीच कोई अंतर है? आदि कई प्रश्नों व राष्ट्र और राष्ट्रवाद से जुड़े वाद-विवाद का इस अध्याय में विवेचना करेंगे।

आज गतिशील विचारों के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र को कुछ इस प्रकार से परिभाषित किया जाता है- राष्ट्र एक ऐसे जन-समूह को कहते हैं जिसकी एक पहचान होती है यह पहचान किसी समान भाषा, धर्म, इतिहास, नैतिक आचार या मूल उद्गम से होता है। यह पहचान राष्ट्र को जोड़ने का कार्य करती है। यह राष्ट्र की आम परिभाषा मानी जाती है पर क्या यही वास्तविक परिभाषा है? क्या इसी आधार पर भारत एक राष्ट्र है? क्या इस परिभाषा के आधार पर भी भारतीय राष्ट्र को परिभाषित कर सकते हैं? यह प्रश्न इसलिए क्योंकि भारत की न तो कोई समान भाषा है, न ही कोई समान धर्म और मूल उद्गम पर वाद-विवाद चल रहा है तो कैसे माने की भारत एक राष्ट्र है? इसका उत्तर के लिए भारत व यूरोप के महत्वपूर्ण चिंतकों का राष्ट्र के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन कर पं. दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्र के प्रति दृष्टिकोण के साथ अवलोकन करेंगे। अंत में निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि भारत एक सशक्त राष्ट्र होने का आधार क्या है भारतीय राष्ट्र, राष्ट्र की सामान्य परिभाषाओं से किस प्रकार अलग है? और भारत के लिए कौन सी परिभाषा उचित होगी?

### स्वामी विवेकानंद और दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्र व राष्ट्रवाद पर अनेक भारतीय चिंतकों ने अपने मत दिए हैं। भारत के आधुनिक विचारक स्वामी विवेकानंद राष्ट्र व राष्ट्रवाद की धार्मिक अवधारणा देते हैं। 'हेगेल' (1770-1831) ने कहा कि जैसे हर वस्तु का एक प्रमुख तत्व होता है उसी प्रकार से राष्ट्र जीवन का भी प्रमुख तत्व होता है। हेगेल ने अभिव्यक्ति<sup>1</sup> को राष्ट्र का प्रमुख तत्व माना है। उसी प्रकार विवेकानंद ने भी माना कि भारत राष्ट्र का भी एक प्रमुख तत्व है वह तत्व है 'धर्म'<sup>2</sup>। विवेकानंद कहते थे कि "जिस प्रकार संगीत में प्रमुख स्वर तत्व होता है वैसे ही हर राष्ट्र के जीवन में एक प्रधान तत्व हुआ करता है, अन्य सब तत्व उसी में केन्द्रित होता है। भारत का तत्व है धर्म!"<sup>3</sup> उन्होंने यह इसलिए माना क्योंकि अगर प्रत्येक व्यक्ति धर्म का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ेगा तो समाज एक न्यायिक स्वरूप में आगे बढ़ कर राष्ट्र के विकास में सहायक होगा और धीरे-धीरे भविष्य में धर्म भारत जीवन का मेरुदंड बन जाएगा। इस कारण राष्ट्र में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति भारत रूपी अपनी जन्मभूमि की सेवा करना अपना सबसे बड़ा कर्तव्य समझेगा और यह अंत में विश्व बंधुता में बदल जाएगा और मानव जीवन अपने सर्वोत्तम विकास पंहुच कर अंतरराष्ट्रीयवाद का आकार ले लेगी। विवेकानंद मुख्य रूप से धर्म और दर्शन को संयोजित करके राष्ट्र में धार्मिक स्वरूप को व्यवहारिक धरातल पर लाने का अथक प्रयास किया। जिसमें किसी प्रकार के संकीर्णता व रूढ़िवादिता का कोई स्थान नहीं होगा सभी लोग समाज में बंधुतापूर्ण रहेंगे। यह तभी संभव है जब हिन्दू व मुस्लिम समुदाय एक साथ शांतिपूर्ण से रहें, इसी एकता के आधार पर ही राष्ट्र का सर्वांगीण विकास संभव हो पाएगा। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भी समाज रूपी राष्ट्र में धर्म को प्रमुखता दी है और उन्होंने कहा है कि धर्म ही राष्ट्र का गौरव और विनाशक होता है। दीनदयाल उपाध्याय भी विवेकानंद के विचारों से प्रभावित थे। वह भी उन्हीं की तरह कहा करते थे कि मानव, समाज व राष्ट्र का विकास एकात्मकता से ही संभव हो पाएगा। यहाँ यह देख सकते हैं कि दोनों विद्वानों ने अपने विचार में मानव को केंद्र में रख कर ही अपने विचार की शुरुआत की और अंतिम अवस्था में विश्वबंधुत्वका अंतरराष्ट्रीयवाद पर आकार भी मानव को ही केंद्र में रखा और माना। जो मानव के व्यवहार व धर्म के द्वारा चालित होगा वही राष्ट्र स्वरूप को विश्वरूपी बना सकता है। इस प्रकार प्रतीत होता है कि पं. दीनदयाल उपाध्याय ने स्वामी विवेकानंद के विचारों से प्रभावित होकर ही एकात्म मानववाद के स्वरूप का निर्धारण किया होगा। इस प्रकार स्वामी विवेकानंद ने राष्ट्रवाद को नए स्वरूप में परिभाषित किया। वस्तुतः हमारे राजनेता राष्ट्र जीवन के विकास में 'धर्म' की महत्वता को स्वीकार कर स्वदेशी आयात को लेकर चले होते, तो आज राष्ट्रीय स्वरूप का दृश्य अलग व अत्यधिक उज्ज्वल होता और विश्व पटल पर अपनी एक अलग ही पहचान होती।

### राधा कुमुद मुखर्जी और दीनदयाल उपाध्याय

- <sup>1</sup> हेगेल के अनुसार अभिव्यक्ति ही मूलतत्व के विकास का परिणाम है, उनके अनुसार सारी मूर्त व अमूर्त वस्तुएं इसी अभिव्यक्ति का परिणाम हैं इसी से आत्म विकास को व्यक्त और विकास किया जा सकता है और राष्ट्र जीवन का भी प्रमुख तत्व अभिव्यक्ति है उसको हेगेल ने माना
- <sup>2</sup> विवेकानंद के अनुसार धर्म सिर्फ किसी प्रकार से सिर्फ भजन किर्तन करने तक ही सीमित नहीं था। बल्कि, धर्म एक शक्ति का सार है जो मनुष्य को अपने कर्तव्य और ऊत्तरदायित्व का बोध करता है। धर्म एक शक्ति का सार है जो धर्महृदय में शक्ति का संचार नहीं करता, विवेकानंद उसे धर्म नहीं मानते उनके अनुसार शक्ति धर्म से बड़ी वस्तु है और शक्ति से बढ़कर कुछ नहीं
- <sup>3</sup> पुखराज, जैन. भारतीय राजनीतिक विचारक. दिल्ली: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 2002 दिल्ली. पृष्ठ 148.

राजनीतिक विघटन के बाद भारतीय राष्ट्र पर कई बार प्रश्न उठते रहे हैं कि क्या भारत एक राष्ट्र है? प्रश्न उठाने वाले यह मत देते हैं कि भारत में विभिन्न प्रकार की जाति, धर्म, भाषा के लोग रहते हैं जो सही तौर पर एकता से विपरीत सा प्रतीत होता है। इस परिदृश्य में भारत के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. राधा कुमुद मुखर्जी द्वारा लिखित कृत “द फनडामेंटल यूनिटी ऑफ इंडिया” (1954) बहुत प्रासंगिक विचार प्रस्तुत करते प्रतीत होता है। इसमें राधा कुमुद मुखर्जी ने भारत की धार्मिक सूत्रों को सहेजे हुए भारत एक पंथनिरपेक्ष राष्ट्र है उसकी परिकल्पना की मुखर्जी मानते थे कि राष्ट्र भौगोलिक संरचना, खनिज-लवण, जलवायु, नदी-नालों, वहाँ के रहने वाले लोगों की भाषा, धर्म, जाति से समन्वय स्थापित करके कण-कण में बसे होते हैं इसका कोई एक मात्र आधार नहीं होता, जो आज के चिंतक जो राष्ट्र को किसी एक आधार पर परिभाषित करने की भूल करते हैं। बल्कि राधा कुमुद कहते हैं कि “एक राष्ट्र के निर्माण के बहुत से आवश्यक तत्व होते हैं जैसे भाषाई समानता, समान धर्म, सार्वजनिक सरकार, एक समान संस्कृति, सामाजिक अर्थव्यवस्था और एक सबसे महत्वपूर्ण है अपना देश होना”<sup>4</sup> इसमें हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि किसी भी राष्ट्र के लिए भौगोलिक आधार बहुत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि इससे किसी देश का अस्तित्व निर्भर करता है क्योंकि इतिहास साक्षी है कि खानाबदोश या घुमक्कड़ समुदाय का अपना कोई एक निश्चित स्थान नहीं होता इस कारणवश इन लोगों का न कोई राष्ट्र या सभ्यता विकसित होने का कोई प्रणाम नहीं मिल पाता, जब तक कि यह लोग कोई स्थाई आबादी की सीमाओं में न बंध जाए। उदाहरण के लिए अगर हम यहूदी समुदाय की बात करें तो देखेंगे कि उस समुदाय को तभी मान्यता मिली जब वह किसी भूमि पर स्थाई रूप से बस गए। इसलिए राधा कुमुद मुखर्जी ने अपनी कृति में कहा कि “किसी राष्ट्र के उदय और विकास की पहली शर्त है कि एक सुनिश्चित स्थान जो स्थिर तथा स्थायी रहे और जब कोई स्थान सुनिश्चित हो जाए तो निर्माण के अन्य कारक स्वयं उभरने लगेंगे।”<sup>5</sup> इस प्रकार यह अहसास दिलाने का प्रयत्न कर रहे थे जो पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भी अपने विचारी में अंकित किया कि भारत में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति में एक मातृभूमिकी भावना हो। दीनदयाल उपाध्याय भौगोलिक के साथ सांस्कृतिक संघात को भी बहुत महत्वपूर्ण मानते थे। क्योंकि वह मानते हैं कि भूगोल हमें एक संरचना प्रदान करता है। उसी प्रकार से संस्कृति हमें इस भूमि को सँजोये रखने का गुण सिखाती है और राष्ट्र को एक आध्यात्मिक सार तत्व प्रदान करती है।

भारत विश्व में सबसे विविधता पूर्ण देश है इस विविधता के बावजूद राष्ट्र में एकता का समन्वय है इसका प्रमुख कारण क्या है? कई इतिहासकार यह भी माने हैं कि भारत की एकता ब्रिटिश की देन है क्या यह सही प्रतीत होता है? क्या सही में भारत की यह विविधता भारत की एक कमजोर कड़ी है? राधा कुमुद मानते हैं भारत की इस विविधता के पीछे मूलभूत एकता व्याप्त है यह विविधता स्वयं कोई कमजोर कड़ी नहीं बल्कि भारत को शक्ति सम्पन्न बनने में उर्वरक का कार्य करती है। यह एकता ब्रिटिश की देन नहीं बल्कि यह एकता ब्रिटिश के आने से पहले सदियों से चलती आ रही है। राधा कुमुद अपने पुस्तक में कहते हैं कि भारत की एकता व इसकी खोज कोई सौ दो सौ साल का विकास का परिणाम नहीं है न ही कोई खोज इसका तो युगों का इतिहास है। ऐसे साक्ष्यों का अभाव नहीं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय धर्म, संस्कृति और सभ्यता अपनी विशाल जन्मभूमि भौगोलिक एकता के प्रति पूर्ण रूप से सचेत थे और विभिन्न माध्यमों से जनमानस में इस तथ्य का बीजारोपण किया, साथ ही सम्पूर्ण राष्ट्र की अभिव्यक्ति के लिए एक मात्र नाम दिया गया ‘जंबुदीप’<sup>6</sup> इसके बाद इसे भारतवर्ष कहा जाने लगा इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत की एकता का सूत्रपात कई सदियों पहले हो चुका था न कि अंग्रेज के आगमन के बाद हुआ जगद्गुरु शंकराचार्य ने इस एकता को और स्पष्ट करने के लिए चार सुदूर स्थानों पर तीर्थस्थानों<sup>7</sup> की स्थापना की, जो सम्पूर्ण मातृभूमि के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति है जो राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधती है। पं. दीनदयाल उपाध्याय अखंड भारत के लिए सिर्फ भौगोलिक एकता को ही परिपूर्ण नहीं मानते थे बल्कि वह अखंड भारत जीवन का धोतक है जो अनेकता में एकता का दर्शन करता है इसलिए पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा अखंड भारत किसी प्रकार का राजनीतिक नारा नहीं जो अन्य देशों के लिए होता है बल्कि अखंड भारत सम्पूर्ण जीव का मूलाधार है जो युगों-युगों से चली आ रही सांस्कृतिक परंपरा पर आधारित है यह उस संस्कृति की मूल आधार की ही देन है जो अंग्रेजों के लाख फुट डालो शासन करो’ की नीति के बावजूद भी विविधता में एकता के सूत्र में बांधे हुए है। राधा कुमुद भी भारत को “एक ऐसी राष्ट्रीयता का

<sup>4</sup> राधा, कुमुद मुखर्जी भारत कि मूलभूत एकता अनुवादक विपिन कुमार, दिल्ली: सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, 2010. पृष्ठ संख्या 29.

<sup>5</sup> वही पृष्ठ 30.

<sup>6</sup> अशोक के शासन काल में यह नाम प्रचलित था, बौद्धग्रंथों में जिसमें अशोक को अकसर जंबुदीप का राजा कहा कुलपाल शासकों ने भी अपने अभिलेख में स्वयं को जंबुदीप का राजा कहा है

<sup>7</sup> यह चार तीर्थस्थान भारत के चारों दिशाओं में हैं उतर में बदरिकेदारनाथ, दक्षिण में रामेश्वरम, पश्चिम में द्वारका और पूर्व में जगन्नाथ पूरी

जिसकी नीव मनुष्य और मनुष्य के बीच था मनुष्य एवं हर एक सजीव के बीच सार्वभौमिक शांति (अहिंसा) पर आधारित है।<sup>8</sup> इस प्रकार हम यह देख सकते हैं कि राधा कुमुद मुखर्जी के विचार भारत की मूलभूत एकता के लिए उन्होंने अपनी कृति एक इतिहासिक वर्णन प्रस्तुत किया है उन्हीं के विचारों को परिपूर्णता से आगे बढ़ाने का कार्य दीनदयाल उपाध्याय ने किया। उपाध्याय ने भारत की एकता और अखंडता के लिए भौगोलिकता के साथ संस्कृति का भी आधार महत्वपूर्ण माना जिसे उपाध्याय ने 'चिति' कहा।

### रवीन्द्रनाथ ठाकुर व दीनदयाल उपाध्याय

भारतीय विचारकों ने समय-समय पर राष्ट्र व राष्ट्रवाद के उग्र रूप की आलोचना करते आए हैं। उन्हीं आलोचकों में से एक रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर राष्ट्रवाद को संकीर्णता का प्रतीक व मानव जीवन के विकास में बाधा के साथ-साथ आध्यात्मिक में ह्रास करने वाला, समाज विरोधी व मानव विरोधी मानते थे। उन्होंने अपने 'निबंध 'नेशनलिज्म' (1917) में विचार दिए कि राष्ट्रवाद राजनीतिक एवं आर्थिक संगठन के आधार पर सिर्फ उत्पादन में वृद्धि तथा मानवीय श्रम की बचत कर अधिक संपन्नता प्राप्त करने का यांत्रिक प्रयास है। राष्ट्रवाद की धारणा विज्ञापन तथा अन्य संगठन का लाभ उठाकर राष्ट्र की समृद्धि एवं राजनीतिक शक्ति में अभिवृद्धि करने में प्रयुक्त हुई है। शक्ति की वृद्धि ने राष्ट्रों में पारस्परिक द्वेष घृणा तथा भय का वातावरण उत्पन्न कर मानव जीवन को अस्थिर एवं असुरक्षित बना दिया है। शक्ति की यह लालसा जीवन के साथ खिलवाड़ है क्योंकि शक्ति का प्रयोग बाहरी संबंधों के साथ-साथ राष्ट्र की आंतरिक स्थिति को नियंत्रित करने में भी होता है। ऐसी परिस्थिति में समाज पर नियंत्रण बढ़ना स्वाभाविक है जो राष्ट्र समाज तथा व्यक्तिगत जीवन पर छा जाता है और एक भयावह नियंत्रणकारी स्वरूप प्राप्त कर लेता है।<sup>9</sup> वह राष्ट्रवाद को राज्यशक्ति का प्रयोग आनियंत्रित अपराध के लिए करना मानते थे, व्यक्ति को राष्ट्र के प्रति समर्पित होने का आवाहन करते हैं जो रवीन्द्रनाथ को स्वीकार्य नहीं था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन के राजनीतिक स्वतंत्रता से संबंधित पक्ष के आलोचक थे क्योंकि उनका यह विश्वास था कि भारत इससे शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। भारत को अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाना चाहिए आर्थिक प्रगति में भारत चाहे पिछड़ा हुआ हो किंतु मानवीय मूल्यों में पिछड़ापन नहीं होना चाहिए। अगर हम पं. दीनदयाल उपाध्याय से तुलना करें तो पाएंगे कि दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्र व राष्ट्रवाद का वर्णन भारतीय दृष्टिकोण से किया। भारतीय इतिहास की संस्कृति को आधार मानकर भारतीयकरण को समाहित कर राष्ट्र का विचार दिए, जो भारत के विकास के उपयुक्त लगता है। वही अगर हम रवीन्द्रनाथ ठाकुर के राष्ट्र के विचारों पर चिंतन करें तो यह प्रतीत होता है उन्हीं भारतीय संस्कृति का अनुसरण कर यह विचार नहीं दिए बल्कि यूरोप के राष्ट्र के बनाने के प्रक्रिया में जो रक्तपात हुआ उसे ध्यान में रखकर उन्होंने अपना विचार दिया जो उस परिदेश में उचित है परंतु भारतीय परिदेश जिसकी संस्कृति आधार मानवता सत्य, अहिंसा, आपसी सहयोग पर आधारित है जिसे पं. दीनदयाल उपाध्याय के द्वारा एकात्म मानवदर्शन में देखने को मिलता है।

### विनायक दामोदर सावरकर की राष्ट्र की अवधारणा और दीनदयाल उपाध्याय

विनायक दामोदर सावरकर भारतीय राष्ट्रवाद को हिन्दू राष्ट्रवाद की संज्ञा देते थे। उन्हीं हिन्दू को व्यापक रूप से परिभाषित करते हुए कहा कि जो व्यक्ति सिंधु से समुन्द्र पर्यंत सम्पूर्ण भारत को अपनी पितृभूमि तथा पुण्यभूमि मानता है वही हिन्दू विनायक दामोदर सावरकर हिंदू राष्ट्रवाद या हिन्दू राष्ट्र क्यों कहना चाहिए उसके ऊपर मत व्यक्त करते हुए कहा है कि "हिंदुओंको विभाजित करने वाले धार्मिक आन्दोलन के स्थान पर उनके राजनीतिक एवं सामाजिक एकीकरण की अधिक आवश्यकता थी। उन्हीं हिंदुओं के समानितों पर बल देते हुए उनको संगठित होने के लिए आवाहन किया उनका यह परम विश्वास था कि एक राष्ट्र की दृष्टि से हिंदुओं में भाषा इतिहास, सांस्कृतिक, देश धर्म आदि समस्त तत्वों की समानता विद्यमान थी। इस आधार पर हिंदुओं को राष्ट्र के स्वरूप में स्वीकार किया जा सकता है।"<sup>10</sup> अपनी पुस्तक में सावरकर ने हिन्दू राष्ट्र की एकता को क्यों स्वीकार करना चाहिए उसके तीन लक्षण बताए हैं। उनके अनुसार पहला लक्ष्य राष्ट्रप्रेम एवं प्रादेशिक एकता तथा अखंडता में विश्वास था जो यहाँ के रहने वाले प्रत्येक हिन्दू का विश्वास है कि सिंधु से समुन्द्रपर्यंत सम्पूर्ण भारत है। दूसरा लक्ष्य जातीय तथा रक्त संबंध था जो सिंधु से समुन्द्र पर्यंत सम्पूर्ण भारत में रहने वाले सौंमें वह हिंदू रक्त को हिंदुत्व के महत्वपूर्ण तत्व के रूप में मानते माना। तीसरा लक्षण हिंदू सभ्यता तथा सांस्कृतिक में गर्व अनुभव करने से संबंधित था, जो वैदिक ऋषियों

<sup>8</sup> राधा, कुमुद मुखर्जी भारत कि मूलभूत एकता अनुवादक विपिन कुमार, दिल्ली: सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, 2010. पृष्ठ संख्या 114.

<sup>9</sup> रवीन्द्र नाथ, ठाकुर. नेशनलिज्म. लंडन: मैकमिलन, 1920. पृष्ठ संख्या 3-4.

<sup>10</sup> बी. डी. सावरकर, हिन्दुत्व हु इज अ हिन्दू, छठा संस्करण, दिल्ली: भारती साहित्य सदन, पृष्ठ संख्या 111.

आपरागनी तथा पतंजलि जैसे व्याकरण बोध तथा कालिदास जैसे कवि। राम तथा कृष्णा जैसे युग पुरुषशिवाजी व प्रताप जैसे स्वतंत्रता सेनानी से समान रूप में प्रेरणा प्राप्त की उनकी प्राचीन पवित्र भाषा संस्कृत में समान रूप से नगरी लिपि द्वारा समस्त लेखनको प्रभावित किया तथा उनके विचार से गंगा तथा मिसिसिपी नदियों के पानी में कोई अंतर नहीं था इसलिए प्रश्न यह उठता है कि गंगा जैसे नदी भारत के अलावा कहीं नहीं है, इसीलिए हम भारत को आदित्य देश मानते हैं। इस देश के हिंदू के इतिहास तथा उनके पूर्वजों की जन्मभूमि तथा कर्मभूमि रहा है इसलिए हमें इससे अत्यधिक लगाव है। साथ ही सावरकर ने अपनी पुस्तक में कहा कि भारत में केवल हिंदू ही राष्ट्र के रूप में थे तथा अन्य व्यक्ति अल्पसंख्यक के रूप में हिंदुओं का अतीत और वर्तमान इतिहास समान था उन्होंने शत्रुओं का सामना किया उनकी इस एकता ने उन्हें एक विशिष्ट राष्ट्र में परिवर्तित कर दिया। हिंदुओं के सांस्कृतिक त्यौहार और रीतिरिवाज सामान्य रहे जो राष्ट्र को एकता में ढालती है। पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचार सावरकर के विचार से तुलना करे तो पाएंगे कि दीनदयाल के विचार में वह भाव नहीं था जो सावरकर के विचारों में था। क्योंकि दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्र को संस्कृति के आधार माना। वही सावरकर ने भी यही आधार माना, परंतु सावरकर ने बहुत अधिक जोर हिन्दुत्व पर दिया जिसका बाद में कई भ्रांतिया पैदा हो गईं। यह हो सकता है कि यह भ्रांतिया इस लिए फैली क्योंकि सावरकर जिस संदर्भ में कह रहे थे उस संदर्भ में लोगो ने समझा नहीं। दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्र की अवधारणा में किसी प्रकार की भ्रांति देखने को नहीं मिलती जिस प्रकार से सावरकर के विचारों से अन्य लोगों को समझने में मिलती है। दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण कर राष्ट्र की अवधारणा प्रस्तुत किया जिसका आधार एकात्मकता का भाव था। जिसमें राष्ट्र चिति के स्वरूप से और सशक्त बनता है। चिति ही राष्ट्र की आत्मा है। जो लोगों के आपसी समंजस्य बढ़ाने का कार्य करती है। राष्ट्र स्वरूप के संचालन किस प्रकार हो? उसका उन्होंने हल एकात्म मानव दर्शन में दिया जो भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर दिया गया दर्शन है।

### भीमराव अम्बेडकर और दीनदयाल उपाध्याय

भीमराव अम्बेडकर ने सीधे तौर पर राष्ट्र की कोई अवधारणा नहीं दी परंतु राष्ट्र में व्याप्त असमानता व शोषण के विरुद्ध आवाज ही नहीं उठाई बल्कि संघर्ष भी किया, और समय-समय पर अपने मत भी दिए। बाबा साहब ने भारतीय राष्ट्र में व्याप्त छुआ-छूत के विरोध में व्यापक स्तर पर लोगों को जागरूक किया और इसे दूर करने के जीवन भर संघर्ष किया। उन्होंने राष्ट्र सामाजिक स्तर के भेदभाव को राजनीतिक स्तर पर हल करने की अपार कोशिश की। उनका विचार था कि 'धर्म व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति धर्म के लिए नहीं' कोई भी धर्म व्यक्ति से व्यक्ति में भेद करने को नहीं कहता बल्कि धर्म के कुछ वर्ग-समूह अपने लाभ के लिए उसका यह प्रयोग करते हैं जो धीरे-धीरे समाज में यह व्यापक स्तर विद्यमान हो जाता है। हिन्दू धर्म में भी कुछ ऐसा ही हुआ। अम्बेडकर हिन्दू धर्म पद्धति के घोर विरोधी थे जीवन के अंत में उन्होंने हिन्दू धर्म त्याग दिया था। पं. दीनदयाल उपाध्याय भी समाज में किसी प्रकार के भेदभाव के खिलाफ थे इसलिए अपने एकात्म मानव दर्शन में सभी व्यक्ति को एक समान माना व्यक्ति को जाति, वंश या किसी प्रकार से भेदभाव किया जाएगा प्रत्येक मानव एकात्मकता के साथ रह कर अपने जीवन के सभी अंगों को ध्यान में रखते हुए मनुष्य शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का संकलित रूप से सर्वांगीण विकास करेगा।

### रोमिला थापर और दीनदयाल उपाध्याय

रोमिला थापर ने समकालीन घटनाओं का विश्लेषण कर अपने विचार पुस्तक 'ऑन नेसनलिस्म' (2016) में राष्ट्र व राष्ट्रवाद पर अपने विचार दिये। उन्होंने कहा, आज-कल राष्ट्र व राष्ट्रवाद के नई-नई राजनीतिक परिभाषाएँ दी जा रही हैं जिससे किसी खास दल को उसका लाभ मिले। इस कारण समाज में कई समस्या आ गई है। थापर कहती है कि "राष्ट्रवाद किसी समाज की एक साझी समझ का अनुकरण है न कि नारा (slogans) लगाने की धारणा जैसे 'भारत माता की जय' राष्ट्रवाद का प्रतीक है।"<sup>11</sup> थापर का मानना है कि सरकार द्वारा नए-नए संकेतों के द्वारा राष्ट्रवाद लोगों में उजागर करने की जो नीति अपना रही है। सरकार राष्ट्र की मौलिकता को प्रश्न चिन्ह लगती है, व लोगों के अधिकारों का नज़र-अंदाज़ करती है। थापर कहती है कि इनके कारण कोई राष्ट्रवाद या राष्ट्र के प्रति प्रेम नहीं बढ़ेगा बल्कि लोग इसे अपने जीवन में हस्तक्षेप समझेंगे। थापर कहती है कि 'राष्ट्रवाद राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धता (commitment) करने का स्वरूप है न कि नारे लगाने का प्रतीक, आज समकालीन भारत में नारे लगाने मात्र को ही राष्ट्रवाद माना जाने लगा है। नारे से आज लोगों को पहचान की जा रही

<sup>11</sup> रोमिला, थापर. ऑन नेसनलिस्म, आलेफ बुक कंपनी नई दिल्ली 2016. पृष्ठ संख्या, 5.



है यह राष्ट्रवादी है या राष्ट्र विरोधी।<sup>12</sup> इसमें राष्ट्रवादी होने या राष्ट्र विरोधी होने का आधार इस पर निर्धारित होता है कि लोग राष्ट्रवाद को किस प्रकार से समझते हैं? रोमिला थापर का मामना है कि जो राष्ट्रवाद की धारणा लोग बना लेते हैं और उसी आधार पर वह निर्धारित करते हैं कि कौन राष्ट्रवादी है और कौन राष्ट्र विरोधी? किसी को यह उचित लगता है तो किसी को नहीं लगता। इससे यह पता चलता है कि राष्ट्रवाद की परिभाषा संदर्भ अनुसार पश्चात्त की जाती है जैसे आजादी प्राप्ति से पहले राष्ट्रवाद की परिभाषा अलग थी और आजादी प्राप्ति के बाद अलग और अभी समकालीन में अलग। नारे लगाने की प्रथा वाली राष्ट्रवाद की धारणा आजादी से पहले से ही चलती आ रही है भारत माता की जय के जयघोष से कई आंदोलन का आरंभ होता था। आज के संदर्भ में यह कितना प्रासंगिक या वाद का विषय परंतु नारे लगाना भी राष्ट्रवाद का प्रतीक के रूप में माना जाता था। आज इसका राजनीतिक रूप देने से इसकी प्रासंगिकता पर प्रश्न लगना उचित प्रतीत नहीं होता। किसी प्रकार का नारा जो देश के गुणगान के लिए हो इसमें किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इन्हीं नारों ने आजादी के आंदोलन में युवाओं में एक स्फूर्ति प्रदान की थी इसलिए नारे लगाना भी राष्ट्रवाद का एक भाग है इसे देखने का एक नजरिया होना चाहिए।

### कुछ यूरोपीय चिंतक के राष्ट्र पर विचार और दीनदयाल उपाध्याय

अर्नेस्ट रेनान (Ernest Renan) ने निबंध 'वॉट इज नेसन'(1882) में कहा कि राष्ट्र को एक साथ लाने की जो प्रक्रिया थी वह काफी जटिल थी क्योंकि भाषा, धर्म, रंग आदि सब अलग-अलग थे परंतु धीरे-धीरे सहयोग के आधार पर इस जटिल प्रक्रिया में कुछ सुलभता आई। यह सहयोग की भावना अचानक नहीं आई बल्कि अपने एक समान इतिहास के कारण यह सहयोग की भावना पनपी। इस आधार पर रेनान का मत है कि राष्ट्र की जो बनने की प्रक्रिया है उसका आधार आपसी सहमति (mutual consent), त्याग और निष्ठा की पराकाष्ठा है। रेनान ने जहां राष्ट्र के बनने की प्रक्रिया में सहयोग के महत्व को स्वीकार किया है, वही वह सहयोग के आधार को ऐतिहासिक बताते हैं। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भी राष्ट्र के बनने और राष्ट्र के बनाए रखने के स्वरूप में सहयोग की भावना प्रथम है जो यह सहयोग व एकात्मकता का भाव संस्कृति से आई है जिसका एक इतिहासिक आधार है जिसे चिति कहा गया इसी चिति के कारण आज भारत का राष्ट्र स्वरूप बना हुआ और अन्य विश्व की कई सभ्यतायें लुप्त हो चुकी हैं।

अर्नेस्ट गेलनर(Ernest Gellner)ने अपनी कृति 'नेसन एंड नेस्लिज्म' (1983) में यह माना कि राष्ट्र का विकास औद्योगिक क्रांति के प्रचलन के बाद हुआ। औद्योगिक क्रांति से पहले राष्ट्र का कोई स्वरूप नहीं था। अपनी कृति में गेलनर राष्ट्र को नृजातीय(Ethnic) जड़े में न जाकर मानव जीवन के तीन अवधि के विकास का विश्लेषण करते हैं। पहले वह मानव समाज के विकास के पहले चरण का वर्णन करते हैं कि कैसे मानव आदिम अवस्था में अपना भरण पोषण करने के लिए शिकार करने की अवस्था में आए, फिर धीरे-धीरे मानव कृषि अवस्था में आए यहाँ से मानव जाति की तार्किकता की पराकाष्ठा का नवजागरण होना प्रारम्भ हुआ, जिसे गेलनर ने दूसरी अवस्था कहा। धीरे- धीरे नए-नए आविष्कार हुए और वह औद्योगीकरण की अवस्था में प्रारम्भ हुआ जिस गेलनर ने तीसरी अवस्था कहा, गेलनर के अनुसार यही वह अवस्था है जहां से राष्ट्रवाद का आगमन हुआ। उनका मानना है कि जैसे ही औद्योगीकरण आया उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हुई, इस उत्पादन को बेचने के लिए एक बाजार की आवश्यकता थी, इस उत्पादन को बेचने के लिए उपनिवेशवाद प्राप्त करने की होड़ सी लगी। गेलनर के अनुसार इसी अवस्था में राष्ट्रवाद का आगमन हुआ क्योंकि औद्योगीकरण से पहले समाज के पास ऐसी कोई खास वजह नहीं थी कि वह राष्ट्र व राष्ट्रवाद का स्वरूप ले, इसलिए राष्ट्र ने राष्ट्रवाद नहीं बनाया बल्कि राष्ट्रवाद ने राष्ट्रों को बनाया है। गेलनर का राष्ट्र और राष्ट्रवाद से संबंधित जो विचार है वह संकुचित मानसिकता को प्रदर्शित करता है उनका यह विचार यूरोप के संदर्भ में उचित हो सकता है परंतु भारत के संदर्भ में बिल्कुल भी उचित प्रतीत नहीं लगता क्योंकि यूरोप के राष्ट्रवाद का आधार आर्थिक लोभ की मंशा व राजनीतिक समस्या का परिणाम था, परंतु भारत का राष्ट्रवाद राजनीतिक नहीं सांस्कृतिक इकाई है। वही यूरोप का राष्ट्रवाद के उदय के कारण राष्ट्र और राज्य बना, परंतु भारत में राष्ट्र उदय मानव सभ्यता का पहला राष्ट्र माना जाता है, जिसकी उपज पाँच या छः सौ वर्ष का ही इतिहास नहीं जैसे यूरोप के राष्ट्र व राष्ट्रवाद का वर्णन गेलनर ने किया। श्रीमदभागवत में भारत राष्ट्र की स्थापना का वर्णन है।<sup>13</sup> इस प्रकार किसी संकुचित विचार को सम्पूर्ण राष्ट्र के विकास का आधार नहीं हो सकता। गेलनर ने सिर्फ यूरोपियन दृष्टिकोण से अपना राष्ट्र की उत्पत्ति का विचार दिया है जो भारत राष्ट्र के लिए मान्य नहीं है।

<sup>12</sup> रोमिला, थापर. ऑन नेसनलिस्म . दिल्ली: आलेफ बूक कंपनी, 2016. पृष्ठ संख्या 5.

<sup>13</sup> भागवत पुराण हिंदुओं का अठारह पुराणों में से एक है जिसके पंचम स्कन्द में भारत राष्ट्र का वर्णन है

इतिहासवादी बेनेडिक्ट एंडरसन (Benedict Anderson) ने अपनी कृति 'इमैजिन्ड कम्यूनिटिज: रेफ्लेक्स ऑन द ग्रोथ ऑफ नेशनल कंसियसनेस' (1983) में राष्ट्र के स्वरूप का इस प्रकार वर्णन किया कि राष्ट्र एक काल्पनिक समुदायों का समूह मात्र है। क्योंकि उनका मानना था कि राष्ट्र बड़ा हो या छोटा राष्ट्र के अधिकांश सदस्य एक दूसरे समूह या व्यक्ति को नहीं जानते न ही उन्होंने कभी उन्हें देखा, न ही कभी उनसे मिलते जुलते, न ही कभी उनकी आवाज सुनी। परंतु फिर भी हर व्यक्ति के दिमाग में राष्ट्र की छवि बनी रहती है। एंडरसन का मानना है कि भारत में शोषण, गरीबी बड़े स्तर पर असमानता हैं इसके बाद भी यह कल्पना बनी हुई है। रोमिला थापर का मानना है कि 'बेनेडिक्ट एंडरसन ने जो राष्ट्र को काल्पनिक समुदाय मानते हैं वह आज के परिदृश्य में सदृश्य (Feasible) हो गया है क्योंकि आज तकनीकी (टीवी, रेडियो, सिनेमा आदि) की सहायता से सब लोग एक दूसरे समूह से परिचित हो गए हैं जो एकता की भावना को दर्शाने का काम करता है।'<sup>14</sup> पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचार में यह एकता की भावना है वह काल्पनिक नहीं है बल्कि यह पीढ़ी दर पीढ़ी चित्त की रूप में हमेशा चलता रहता है जो संस्कृति की रूप "प्रत्येक राष्ट्र की अपनी विशेष प्रकृति होती है जो ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक कारणों का परिणाम नहीं अपितु जन्मजात है।"<sup>15</sup> इस आधार पर राष्ट्र की एकता का आधार काल्पनिक नहीं बल्कि एक व्यवहारिक स्वरूप का परिणाम है। आज के इंटरनेट के युग में तो दूरियों के कोई मायने नहीं रह गये जैसा रोमिला थापर ने भी अपने विचारों में स्पष्ट रूप से कहा है।

### निष्कर्ष

राष्ट्र बहुआयामी अवधारणा है, जिसको एक समान रूप से परिभाषित करना बहुत जटिल पड़ता है। क्योंकि राष्ट्र व राष्ट्रवाद की परिभाषा हर देश या चिंतक अपने संदर्भ अनुसार परिभाषित करते हैं। या यूँ कहे कि राष्ट्र की परिभाषा संदर्भ अनुसार परिभाषित होती है व उसी के अनुसार उसका अर्थ निकाला जाता है। किसी एक संदर्भ में बहुत सारे अर्थ निकाले जा सकते हैं जैसा ऊपर देख चुके हैं कि भारतीय राष्ट्र को प्रत्येक चिंतक अपने अनुसार परिभाषित करते हैं उदाहरण विवेकानंद के द्वारा राष्ट्र को धार्मिक स्वरूप में देखा गया जहाँ उन्होंने धर्म को आज की परिभाषा से अलग तरह से परिभाषित किया। गांधी जी ने राष्ट्र को स्वावलंबी बनने की बात की, जहाँ हर लोग उसमें जुड़े होंगे व ग्रामीण आधारित अर्थव्यवस्था से राष्ट्र विकास रूपी पहिये को आगे बढ़ाएगा। नेहरू ने राष्ट्र को धर्मनिरपेक्षता पर आधारित होकर आगे बढ़ाने की बात की। सावरकर ने भारतीय राष्ट्र को हिन्दू राष्ट्र बनाने की अपनी तार्किकता व नजरियों को रखा कि क्यों भारत को हिन्दू राष्ट्र होना चाहिए? यूरोपीय चिंतकों ने यूरोप के राष्ट्र बनने की प्रक्रिया को सम्पूर्ण विश्व में राष्ट्र बनने की प्रक्रिया इसी प्रकार की होगी इसकी व्याख्या की, जो कि उनकी संकुचित रूप से राष्ट्र का चिंतन करने स्वरूप को दर्शाता है। रोमिला थापर ने राष्ट्र व राष्ट्रवाद के समकालीन स्वरूप की आलोचना करते हुए, राष्ट्र व राष्ट्रवाद को किस प्रकार से राजनीतिकरण से प्रभावित होकर राजनीतिक दल हित साधते हैं उसका वर्णन किया। रवींद्रनाथ नाथ ठाकुर का राष्ट्रवादी धारणा की आलोचना में सदैव स्मरणीय योगदान है। जो राष्ट्र व राष्ट्रवाद को संकीर्ण मानसिकता की धारणा मानते हैं। यहीं अगर हम पं. दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्र की अवधारणा को इन सभी से तुलना करें तो पाएंगे कि दीनदयाल उपाध्याय की राष्ट्रवाद की अवधारणा किसी एक संदर्भ से प्रभावित होकर नहीं बल्कि उन्होंने भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण कर अपनी राष्ट्र की अवधारणा प्रस्तुत की, राष्ट्र के स्वरूप के संचालन किस प्रकार हो? उसका उन्होंने हल एकात्म मानववाद दर्शन में दिया जो भारतीय संस्कृति को आधार बना कर दिया गया दर्शन है। उपाध्याय ने 'चित्त' कहा।

### संदर्भ सूची

- चंद्र शर्मा, महेश .1995 :वसुधा प्रकाशन दिल्ली :दिल्ली .दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार .
- थापर, रोमिला . ऑन नेशनलिस्म . दिल्ली: आलेफ बुक कंपनी, 2016. पृष्ठ संख्या 10.
- कुमुद मुखर्जी राधा अनुवादक विपिन कुमार .भारत कि मूलभूत एकता, दिल्लीसस्त : साहित्य मण्डल प्रकाशन, 2010.
- ठाकुर, रविंदर नाथमैकमिलन :लंडन .नेशिनलज्म .,1920
- जैन, पुखराज साहित्य भवन पब्लिकेशन्स :दिल्ली . भारतीय राजनीतिक विचारक ., 2002.
- कमल .कीशोर गोयनका, पंडित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति दर्शन. नई दिल्ली.1992दीनदयाल शोध संस्थान :

<sup>14</sup> रोमिला, थापर. ऑन नेशनलिस्म . दिल्ली: आलेफ बुक कंपनी, 2016. पृष्ठ संख्या 10.

<sup>15</sup> महेश, चंद्र शर्मा. दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार दिल्ली: वसुधा प्रकाशन दिल्ली: 1995. पृष्ठ संख्या 359.

- 
- Chatterjee, Partha. Nationalist Thought and the Colonial World- A Derivative Discourse. London: Zed Books, 1993.
  - ———The Nation and its Fragments: Colonial and Postcolonial Histories. Princeton: Princeton University Press, 1993.
  - Gellner, Ernest. Nation and Nationalism. London: Cornell University Press, 2006.
  - Upadaya, Deendya. Intergral Humanism. Delhi: NavchetnaPress, 1965.